आलोचना-पाठ

कविश्री जौहरी

(दोहा)

वंदौं पाँचों परम-गुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि-करन के काज॥१॥

(सखी छन्द)

सुनिये जिन! अरज हमारी, हम दोष किये अति-भारी।
तिनकी अब निर्वृत्ति-काजा, तुम सरन लही जिनराजा॥२॥
इक-बे-ते-चउइंद्री वा, मनरहित-सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदई हो घात विचारी॥३॥
समरंभ-समारंभ-आरंभ, मन-वच-तन कीने प्रारंभ।
कृत-कारित-मोदन करिकैं, क्रोधादि-चतुष्टय धरिकैं॥४॥
शत-आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने परिछेदनतैं।
तिनकी कहूँ को-लों कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥५॥
विपरीत एकांत-विनय के, संशय-अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जायँ कहीने॥६॥
कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया-करि भीनी।
या-विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहुँगति-मधि दोष उपायो॥७॥
हिंसा पुनि झुठ जु चोरी, पर वनिता सों दृग-जोरी।
आरंभ-परिग्रह भीनो, पन-पाप जु या-विधि कीनो॥८॥
सपरस-रसना-घ्रानन को, चखु-कान-विषय-सेवन को।
बहु-करम किये मनमाने, कछु न्याय-अन्याय न जाने॥९॥

फल पंच-उदंबर खाये, मधु-मांस-मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट-मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुःखकारे॥१०॥
दुइबीस-अभख जिन गाये, सो भी निश-दिन भुंजाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों-ज्यों करि उदर भरायो॥११॥
अनंतानु 'जु' बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याखानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥१२॥
परिहास-अरति-रति-सोग, भय-ग्लानि-तिवेद-संयोग।
पनबीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥१३॥
निद्रावश शयन कराई, सुपने-मधि दोष लगाई।
फिर जागि विषय-वन धायो, नानाविध विष-फल खायो॥१४॥
आहार-विहार-निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखे धरी-उठाई, बिन-शोधी वस्तु जु खाई॥१५॥
तब ही परमाद सतायो, बहुविधि-विकलप उपजायो।
कछु सुधि-बुधि नाहिं रही है, मिथ्यामति छाय गई है॥१६॥
मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहु में दोष जु कीनी।
भिन-भिन अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान-विषैं सब पइये॥१७॥
हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस-जीवन-राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी॥१८॥
पृथिवी बुहु-खोद कराई, महलादिक जागाँ चिनाई।
पुनि बिन-गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन बिलोल्यो॥१९॥
हा हा! मैं अदयाचारी, बहुत हरितकाय जु विदारी।
ता-मधि जीवन के खंदा, हम खाये धीरे आनंदा॥२०॥

हा हा! परमाद-बसाई, बिन देखे अगनि जलाई।
ता-मध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये।।२१।।
बीध्यो अन राति पिसायो, ईंधन बिन-सोधि जलायो।
झाड़ू ले जागां बुहारी, चींटी आदिक जीव बिदारी।।२२।।
जल-छानि जिवानी कीनी, सो हू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल-थानक पहुँचाई, किरिया-बिन पाप उपाई।।२३।।
जल-मल मोरिन गिरवायो, कृमि-कुल बहुघात करायो।
नदियन-बिच चीन धुवाये, कोसन के जीव मराये।।२४।।
अन्नादिक शोध कराई, तामें जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे-धूप डराया।।२५।।
पुनि द्रव्य-कमावन काजै, बहु आरंभ-हिंसा साजै।
किये तिसनावश अघ भारी, करूणा नहिं रंच विचारी।।२६।।
इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता।
संतति चिरकाल उपाई, वाणीतैं कहिय न जाई।।२७।।
ताको जु उदय अब आयो, नानाविध मोहि सतायो।
फल भुंजत जिय दुःख पावै, वचतैं कैसें करि गावै।।२८।।
तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है।।२९।।
इस गाँवपती जो होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवै।
तुम तीन-भुवन के स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी।।३०।।
द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता-प्रति कमल रचायो।
अंजन से किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी।।३१।।

मेरे अवगुन न चितारो, प्रभु अपना विरद सम्हारो।
सब दोष-रहित करि स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी।।३२।।
इंद्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक-दोष हरीजे, परमातम निज-पद दीजे।।३३।।

(दोहे)

दोष-रहित जिनदेव जी, निज-पद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़ैं, आनंद-मंगल होय।।
अनुभव-माणिक-पारखी, 'जौहरि' आप जिनंद।
येही वर मोहि दीजिए, चरण-शरण-आनंद।।

***

धर्म और विज्ञान

महाविनाश की आशंका से भयाक्रान्त विश्व को धर्म के अमोघ अस्त्र द्वारा ही भयमुक्त किया जा सकता है। अहिंसा व धर्म की प्रयोगशाला में बैठकर ही विश्व समुदाय भौतिक व धार्मिक जीवन जीने की कला सीख सकता है। धर्म के सुदृढ़ स्तम्भों पर खड़ा विज्ञान ही, मानव कल्याण में समर्थ है। अहिंसा और निःशस्त्रीकरण द्वारा ही, विश्वमैत्री व विश्व शान्ति की स्थापना संभव है। कहीं धर्म बड़ा है और कहीं विज्ञान बड़ा है। अपने-अपने स्थान पर दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। जीवन को उन्नत बनाने में दोनों की अहम् भूमिका होती है। अकेला विज्ञान विनाशकारी सिद्ध हो सकता है, अतः विज्ञान पर धर्म का अंकुश जरूरी है।

विज्ञान एक शक्ति (एनर्जी) है और धर्म, उस शक्ति का उपयोग करने की विधि का नाम है।